बात 'राम' के घर की नहीं बल्कि "रमुआ" के जमीन की है

'राम' महज उतनी ही जमीन के लिए कोर्ट के चक्कर काट रहे हैं जितने में उनका घर बन जाए, वो अपने परिवार के साथ खुशी-खुशी जीवन बिता सकें, क्यूंकि 'राम' को खेती-बारी कर घर नहीं चलाना बल्कि वो तो इस देश के राजाओं के लिए, प्रजा ने अपना पेट काट-काट कर भरा है. देश का एक तबका 'राम' का घर बसाने के लिए संघर्ष भी कर रहा है.ये संभव भी हो कि 'राम' को घर बनाने के लिए जमीन का पट्टा भी मिले और एक भव्य अट्टालिका बनाने के लिए सहयोग भी.

'राम' तो ठीक है लेकिन सवाल करोड़ों "रमुआ" का है जो हजारों साल से बेघर है, बेबस हैं, उसके पास इतनी भी जमीन नहीं कि वो उसमें दफन हो सके. कहें तो मरने के बाद "रमुआ" जैसों की लाश के लिए पूरी धरती ही है, जहाँ चाहें, वहां दफना दें, जला दें."रमुआ" भी इस समाज से, देश और तमाम सरकारों से सदियों से मांग ही रहा है, महज उतनी ही जमीन जितने में वो अपना एक आशियाना बना सके, एक छत जिसे वो अपना कह सके, एक घर जिसमें आकर अपने बच्चों के साथ लुका-छिपी खेल सके. वो सिर्फ जमीन चाहता है जिस पर वो अपनी जी-तोड़ मेहनत से घर बनाएगा और घर चलाएगा. रमुआ तो किसी से सहयोग भी नहीं मांग रहा है.

लेकिन, दुर्भाग्य देखिये! "रमुआ" की लड़ाई में कोई साथ नहीं जबकि 'राम' जो राजा का बेटा है तो उसके लिए सब लड़ने को तैयार हैं. सरकार भी 'राम' को जमीन दिलाने के लिए प्रतिबद्ध है जब कि सरकार, 'राम' ने नहीं बल्कि "रमुआ" ने बनाया है.वैसे "रमुआ" नासमझ है कि सरकार उसने बनाई है, असल में सरकार तो 'राम' के नाम पर बनी है न कि "रमुआ" के नाम पर। सरकार तो ठीक ही कर रही है, जिसके नाम उनके काम आ रही है। खैर, इसे छोड़िये।

वैसे "रमुआ" सुबह-सुबह सब काम छोड़ कर वोट देने के लिए लाइन में खड़ा था कड़ी धूप में, कड़कडाती ठण्ड में क्यूंकि उसे हर बार यही लगा है कि वो अपनी सरकार चुन रहा है जो उसे दी गयी संवैधानिक बराबरी को अक्षरश: जमीन पर उतार देगा।'राम' ने कभी सरकार से कुछ माँगा भी नहीं फिर भी सरकार, 'राम' के लिए व्याकुल है लेकिन "रमुआ" व्याकुल है और उसकी व्याकुलता सरकार-दर - सरकार बनाने के लिए जरूरी है.

"रमुआ" इस बार सरकार के साथ है. वो ये मानता है कि 'राम' को एक बार उसकी जमीन मिल गयी तो "रमुआ" की जमीन की लड़ाई और मजबूत हो जाएगी. "रमुआ" भी तो आखिर अपनी ही जमीन, अपना ही जंगल मांग रहा है. "रमुआ" तो वही जंगल मांग रहा है जो जंगल हजारों साल से "रमुआ" को ही अपना अधिपति मान रहा है, उस जंगल के हर पेड़-पौधे, जीव-जंतु, इसके आगोश में समां जाना चाहते हैं. "रमुआ" तो वही जमीन मांग रहा है जिस जमीन की फसल "रमुआ" को देखने भर से लहलहा उठती हैं. "रमुआ" वो जमीन मांग रहा है जिस पर वो जब हल चलाता था तो जमीन मुस्कुरा उठती थी. "रमुआ" के पैरों में धुल बन कर सज जाती थी, उसके देह में लग कर उससे हसीं-ठिठोली करती थी. वह तो अपनी छीनी हुई जमीन मांग रहा है जिसे राजाओं ने छीन लिया था. राजाओं ने!

कितनी सरकारें वो चुन चुका है, उसकी कितनी उम्मीदें टूट चुकी है. "रमुआ" जानता है कि 'राम' को घर की जरुरत नहीं, जमीन की ख्वाहिश नहीं बल्कि उसे है. "रमुआ" इसी उम्मीद में है कि जब लोग 'राम' की जमीन के लिए लड़ेंगे तो क्या पता लोग जिन्दा "रमुआ" के लिए भी लड़ जाएँ. "रमुआ" की लड़ाई सिर्फ घर बनाने भर, जमीन की नहीं बल्कि घर चलाने के लिए जमीन की है. जिसमें वो फसल ऊगा सके, लौट सके, जमीन धुल बन कर उसके साथ रोमांच कर सकें.

"रमुआ" की लड़ाई का कोई साथी नहीं बस वो जमीन है, वो जंगल हैं जो अपने अधिपति की आस में बंजर हुई जा रही है, सूखी जा रही है. "रमुआ" रोज खेत पर जाता है. जमीन में दरारें देखकर कराह उठता है, उसे बंजर होते देख पीड़ा से टूट जाता है. वह रोज जंगल जाता है, कटे पेड़ों के बीच, बचे पेड़ उसके सामने गिरने लगते हैं. चारों तरफ से रोने की आवाज आती है."रमुआ" पेड़ से लिपट कर रोने लगता है. वह इस व्यवस्था से क्रोधित है क्यूंकि "रमुआ" की लड़ाई जल, जंगल, जमीन की लड़ाई है। "रमुआ" तो 'राम' से भी गुस्सा है। इतने सालों से वह 'राम' के लिए लड़ा है लेकिन 'राम' ने उसकी लड़ाई में कभी साथ नहीं दिया। "रमुआ" के मन में यह सवाल कौंधता रहता है कि उसके साथ 'राम' क्यों नहीं. इसलिए कि 'राम' राजा है और "रमुआ" प्रजा। लेकिन राजतंत्र तो खत्म हो चुका है। खैर! "रमुआ" ने तो राजाओं का इतिहास देखा है, राजा तो राजा का ही हुआ है। तो क्या अबकी सरकारें राजा ही हैं। तो क्या इस लिए एक राजा दूसरे राजा के लिए खड़ा है। जब राजा, राजा के लिए लड़ेगा तो प्रजा क्या करेगी? इसलिए रमुआ को अपनी लड़ाई खुद लड़नी है और वो लड़ भी रहा है. क्योंकि उसे समझ है इस बात कि ये राम के घर की नहीं बल्कि रमुआ के जमीन की लड़ाई है। रमुआ के जमीन की!

- डॉ. दीपक भास्कर

आजाद भारत के पहले शिक्षा मंत्री मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का जन्म 11 नवंबर 1888 को सऊदी अरब के मक्का शहर में एक भारतीय परिवार में हुआ. भारत में 1857 की असफ़ल क्रांति के बाद उनका परिवार मक्का चला गया था. उनके पिता मौलाना खैरुद्दीन साल 1898 में परिवार सहित भारत लौट आए और कलकत्ता में बस गए. आज़ाद को बचपन से ही किताबों से लगाव था. जब वे 12 साल के थे तो बाल पत्रिकाओं में लेख लिखने लगे.

साल 1912 में आज़ाद ने अल-हिलाल नाम की एक पत्रिका निकालनी शुरू की. यह पत्रिका अपने क्रांतिकारी लेखों की वजह से काफी चर्चाओं में रही. ब्रिटिश सरकार ने दो साल के भीतर ही इस पत्रिका की सुरक्षा राशि ज़ब्त कर दी और भारी जुर्माना लगाकर उसे बंद करवा दिया. 1916 आते-आते आज़ाद को बंगाल से बाहर चले जाने का आदेश दे दिया गया और रांची में नज़रबंद कर दिया गया.

राष्ट्रीय एकता के पैरोकार

सार्वजनिक जीवन में उतरने के साथ ही आज़ाद ने स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय एकता को सबसे ज़रूरी हथियार बताया. साल 1921 को आगरा में दिए अपने एक भाषण में उन्होंने अल-हिलाल के प्रमुख उद्देश्यों का ज़िक्र किया. उन्होंने कहा, "मैं यह बताना चाहता हूं कि मैंने अपना सबसे पहला लक्ष्य हिंदू-मुस्लिम एकता रखा है. मैं दृढ़ता के साथ मुसलमानों से कहना चाहूंगा कि यह उनका कर्तव्य है कि वे हिंदुओं के साथ प्रेम और भाईचारे का रिश्ता कायम करें जिससे हम एक सफल राष्ट्र का निर्माण कर सकेंगे."

मौलाना आज़ाद के लिए स्वतंत्रता से भी ज़्यादा महत्वपूर्ण थी राष्ट्र की एकता. साल 1923 में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय संबोधन में उन्होंने कहा, "आज अगर कोई देवी स्वर्ग से उतरकर भी यह कहे कि वह हमें हिंदू-मुस्लिम एकता की कीमत पर 24 घंटे के भीतर स्वतंत्रता दे देगी, तो मैं ऐसी स्वतंत्रता को त्यागना बेहतर समझूंगा. स्वतंत्रता मिलने में होने वाली देरी से हमें थोड़ा नुकसान तो ज़रूर होगा लेकिन अगर हमारी एकता टूट गई तो इससे पूरी मानवता का नुकसान होगा." एक ऐसे दौर में जब राष्ट्रीयता और

सांस्कृतिक पहचान को धर्म के साथ जोड़कर देखा जा रहा था, उस समय मौलाना आज़ाद एक ऐसे राष्ट्र की परिकल्पना कर रहे थे जहां धर्म, जाति, सम्प्रदाय और लिंग किसी के अधिकारों में आड़े न आने पाए.

मुस्लिम लीग से दूरी

हिंदू-मुस्लिम एकता के पैरोकार मौलाना आज़ाद कभी भी मुस्लिम लीग की द्विराष्ट्रवादी सिद्धांत के समर्थक नहीं बने, उन्होंने खुलकर इसका विरोध किया. 15 अप्रैल 1946 को कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आज़ाद ने कहा, "मैंने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान के रूप में अलग राष्ट्र बनाने की मांग को हर पहलू से देखा और इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि यह फ़ैसला न सिर्फ़ भारत के लिए नुकसानदायक साबित होगा बल्कि इसके दुष्परिणाम खुद मुसलमानों को भी झेलने पड़ेंगे. यह फ़ैसला समाधान निकालने की जगह और ज़्यादा परेशानियां पैदा करेगा."

मौलाना आज़ाद ने बंटवारे को रोकने की हरसंभव कोशिश की. साल 1946 में जब बंटवारे की तस्वीर काफ़ी हद तक साफ़ होने लगी और दोनों पक्ष भी बंटवारे पर सहमत हो गए, तब मौलाना आज़ाद ने सभी को आगाह करते हुए कहा था कि आने वाले वक्त में भारत इस बंटवारे के दुष्परिणाम झेलेगा. उन्होंने कहा था कि नफ़रत की नींव पर तैयार हो रहा यह नया देश तभी तक ज़िंदा रहेगा जब तक यह नफ़रत ज़िंदा रहेगी, जब बंटवारे की यह आग ठंडी पड़ने लगेगी तो यह नया देश भी अलग-अलग टुकड़ों में बंटने लगेगा.

पाकिस्तान का भविष्य पहले ही देख लिया था

मौलाना ने जो दृश्य 1946 में देख लिया था, वह पाकिस्तान बनने के कुछ सालों बाद ही 1971 में सच साबित हो गया. मौलाना आज़ाद ने पाकिस्तान के संबंध में कई और भविष्यवाणियां भी पहले ही कर दी थीं. उन्होंने पाकिस्तान बनने से पहले ही कह दिया था कि यह देश एकजुट होकर नहीं रह पाएगा, यहां राजनीतिक नेतृत्व की जगह सेना का शासन चलेगा, यह देश भारी कर्ज़ के बोझ तले दबा रहेगा, पड़ोसी देशों के साथ युद्ध के हालातों का सामना करेगा, यहां अमीर-व्यवसायी वर्ग राष्ट्रीय संपदा का दोहन करेंगे और अंतरराष्ट्रीय ताकतें इस पर अपना प्रभुत्व जमाने की कोशिशें करती रहेंगी.

इसी तरह मौलाना ने भारत में रहने वाले मुसलमानों को भी यह सलाह दी कि वे पाकिस्तान की तरफ पलायन न करें. उन्होंने मुसलमानों को समझाया कि उनके सरहद पार चले जाने से पाकिस्तान मज़बूत नहीं होगा बल्कि भारत के मुसलमान कमज़ोर हो जाएंगे. उन्होंने बताया कि वह वक्त दूर नहीं जब पाकिस्तान में पहले से रहने वाले लोग अपनी क्षेत्रीय पहचान के लिए उठ खड़े होंगे और भारत से वहां जाने वाले लोगों से बिन बुलाए मेहमान की तरह पेश आने लगेंगे.

मौलाना ने मुसलमानों से कहा, "भले ही धर्म के आधार पर हिंदू तुमसे अलग हों लेकिन राष्ट्र और देशभक्ति के आधार पर वे अलग नहीं हैं, वहीं दूसरी तरफ पाकिस्तान में तुम्हें किसी दूसरे राष्ट्र से आए नागरिक की तरह ही देखा जाएगा." जब हम पीछे मुड़ कर देखते हैं तो मौलाना आज़ाद की अक़्ल की दाद देनी पड़ती है उनकी सटीक भविष्यवाणियां प्रशंसनीय हैं.

शायद ये वही प्रशंसा थी जिसकी वजह से पाकिस्तानी लेखक अहमद हुसैन कामिल ने ये सवाल पूछा था- क्या अब वो वक्त नहीं आ गया है कि उपमहाद्वीप के मुसलमान, जो बीते 25 सालों में अभाव और अपमान से जूझ रहे हैं, उस मसीहा की विचारधारा को अपनाएं जिसे उन्होंने 1947 में ख़ारिज कर दिया था.

बीजेपी सरकार में किसान हुए बेहाल, पूंजीपति हुए मालामाल

जन भागीदारी मार्च के दौरान हम उत्तर प्रदेश के जिस जिले में जा रहें हैं ।वहाँ व्यहारिक रूप से किसानों की समस्या बेहद गंभीर रूप से उभर कर सामने आ रही है। ऐसा लगता है यह मुल्क कृषि संकट के बेहद दुर्भाग्यपूर्ण दौर से गुजर रहा है। अगर किसानों का वर्गीकरण उनके जोत के आधार पर किया जाये या फिर अलग अलग वर्ग के तौर पर किया जाये तो सबकी समस्या भी मूल रूप से अलग अलग है और उसके कारण भी। क्योंकि बड़े जोत के किसानों की समस्या अलग है तो छोटे जोत के किसानों की अलग है।

इसके अलावा खेतिहर किसान महिला किसान दलित किसान जोत विहीन किसान मजदूर किसान खेतिहर मजदूर सब कमोबेश वर्तमान सरकार की गलत कृषि नीतियों से त्रस्त हैं। लेकिन उनके दर्द में एक सामूहिकता है जो किसी को भी सोचने के लिए मजबूर कर सकती है। हर कोई अपने स्तर पर खेती किसानी की समस्याओं से जूझ रहा है। खेती किसानी घाटे का सौदा बन जाने के बावजूद भी मजबूरन विकल्पहीनता की स्थिति में इस मुल्क का किसान सब कुछ झेलने के लिये मजबूर है। आज कृषि संकट पूरे समाज का संकट बन चुका है। जो अब इस देश की सभ्यता और इंसानियत के लिये भी संकट बनता जा रहा है।

अगर आँकड़ों की बात की जाये तो वर्तमान मोदी सरकार ने पिछले दो सालों से आँकड़ों का बड़ा हेर फेर किया हैं। चाहे वह सालाना आत्महत्या की दर हो या सूखा या बाढ़ की लिमिट फिक्स करनी हो। बमुश्किल किसानों की आत्महत्या पर ह्रष्टक्रक्ष का प्रोविजनल आकंड़े ज्ञात हुए कि पिछले दो सालों में पूरे देश में 3 लाख 10 हजार लोगों ने कृषि संकट से ग्रस्त होकर आत्महत्या की। वहीं वर्तमान मोदी सरकार जानबूझ कर इन आँकड़ों को छिपाने में लगी हुई है।

वर्तमान कृषि संकट से खेतिहर मजदूरों की संख्या लगातार बढ़ रही है। किसानों की संख्या घट रही है। इससे उपजे कृषि संकट से कृषि से सीधे जुड़ी अन्य सभी प्रकार के रोजगार प्रभावित हो रहें हैं। यह सब कुछ किसी प्राकृतिक आपदा से नहीं हो रहा है। बल्कि वर्तमान सरकार की गलत आर्थिक नीतियों का परिणाम है।

आज देश की सम्पूर्ण कृषि अर्थव्यवस्था कॉरपोरेट की नीतियों से संचालित हो रहा है। कॉरपोरेट ने पूरी तरह से कृषि अर्थव्यवस्था को हाईजैक कर लिया है। वर्तमान मोदी सरकार कॉरपोरेट की शह पर हर तरफ से किसानों का अहित कर रही है जो अब पूर्णयत: कॉरपोरेट की नीतियों का गुलाम बन चुकी है जो किसानों को बर्बाद करने में कोई कसर नहीं छोड़ रही है।

आप चाहे प्रधानमंत्री किसान फसल बीमा योजना को देख लीजिए जो आज की तारीख में किसान लूट योजना बन चुका है। जो अब राफेल से बड़े घोटालें के तौर पर उभर कर सामने आ रहा है। यह सरकार जो जवानों और किसानों के मुद्दे पर सिर्फ हो हल्ला कर उनके सगे होने का ढोंग करती है। लेकिन इनकी कुनीतियाँ ऐसी है जो जवानों और किसानों का सीधे गला काटने में लगी हुई हैं। आज मुल्क के हालात ऐसे है इनसे जवान और किसान दोनों बुरी तरह से प्रभावित हैं। जब जय जवान और जय किसान की बात होती है तो पूरे समाज के सामूहिकता के हित की बात होती है जिसमें दोनों की मूल आत्मा समाहित है।

एक बेटे के पास सिर्फ यूनिफॉर्म है और दूसरे के बेटे पास नहीं है लेकिन दोनों छोटी जोत के किसान के बेटे हैं। नेशनल कमीशन फॉर फॉर्मर रिपोर्ट यानी जिसे स्वामीनाथन रिपोर्ट कहा जाता है, इस रिपोर्ट के आधार पर बात करें तो अगर देश की किसानों के प्रति किसी भी संवेदनशील सरकारों को वाकई में कुछ भला करना है तो उन्हें पूरी सम्पूर्णता के भाव में कृषि संकट से ग्रस्त सभी तरह के किसानों की बात करना बेहद जरूरी है। तभी समाज के सबसे सहनशील मेहनतकश वर्ग का कुछ भला हो सकता है वरना कर्जा माफी और न्यूनतम समर्थन मूल्य MSP बेहतर कर देने से कृषि संकट दूर हो जाएगा तो यह एक सिर्फ भ्रम है। इस भ्रम को तोड़ने के लिये हर स्तर पर प्रयास करने की जरूरत है।

- तरुण पटेल